काव्यपाक

डॉ0 चन्द्रशेखर त्रिपाठी

सहायक प्राध्यापक, मोतीलाल नेहरु मोतीलाल

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

काव्यरचना के निरन्तर अभ्यास से सुकवि का काव्य परिपक्व हो जाता है। यही काव्यपाक है। विकास के प्रारम्भिक युग में अवश्य ही यह काव्यशास्त्र का एक वर्णनीय विषय रहा होगा। उस युग के सम्प्रति अनुपलब्ध ग्रन्थों में इसका विशद् वर्णन भी किया जाता रहा होगा, यह तथ्य काव्यमीमांसा के अध्ययन से प्रमाणित होता है, जहाँ अनेक आचार्यो के दृष्टिकोण से काव्यपाक काव्यपाक से सम्बन्धित अनेक मत उद्धृत किये गये हैं। इस सन्दर्भ में कुछ आचार्य नामनिर्देशपूर्वक तथा कुछ विना नाम लिये लिये उद्धृत हैं। राजशेखर ने अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दी सहित अनेक आचार्यो की मान्यताओं को पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते करते हुये इस विषय का विशद विवेचन किया है।

काव्यपाक क्या है? इस पर आचार्य मङ्गल को सर्वप्रथम एक प्रामाणिक आचार्य के रूप में उद्धृत किया गया है। विभिन्न ग्रन्थों ग्रन्थों में प्राप्त उनके उद्धरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि ये काव्यशास्त्र की दक्षिण भारतीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका अभिमत है कि परिणाम ही पाक है, जो सुबन्त तथा तिङन्त शब्दों की सुन्दर व्युत्पत्ति से निष्पन्न होता है।[1] आचार्य भामह ने विना किसी आचार्य का नाम लिए इस सिद्धान्त को सौशब्द्यवाद कहा था।[2] वे स्वयं इस मत से सहमत नहीं थे, थे, क्योंकि इस पद्धति में अर्थ का संस्कार नहीं होता है। परन्तु आचार्य मङ्गल का यह शब्दसौन्दर्यवाद उस समय काव्यचिन्तन काव्यचिन्तन के क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिष्ठित था, जो किसी न किसी रूप में दण्डी, वामन, विश्वनाथ तथा पण्डितराज जगन्नाथ तक भी चलता रहा। आचार्य वामन ने इसी मत के पोषक आचार्यों की एक कारिका उद्धृत की है, जिसमें पदयोजना को ही काव्य का सर्वस्व कहा गया हैं। अर्थसम्पदा के न होने पर भी पदमात्र के श्रवण से ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हो रही है।[3] महाकवि भवभूति के द्वारा 'म्लानस्य जीवकुसुमस्य"[4] इत्यादि श्लोक में भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। हुआ है। राजशेखर ने अन्यत्र इसे ही वचनविन्यासक्रम कहकर परिभाषित किया है [5] तथा आचार्य भोज इसके लिए सुशब्दता शब्द का प्रयोग करते हैं।[6] अस्तु।

अन्य किसी आचार्य ने सुप् तिङ् पदों के निवेश (प्रयोग-नैपुण्य) में निष्कम्पता की स्थिति को पाक कहा है।[7] पदों के रखने तथा हटाने की प्रवृत्ति तभी तक बनी रहती है , जब तक मन दोलायमान रहता है, परन्तु जब पदों के स्थापन में स्थिरता आ जाती है , अर्थात् जब कवि को काव्य में शब्दों का विन्यास करने के लिए कोई पृथक् प्रयत्न नहीं करना पड़ता, उसके भावों के अनुरूप शब्द स्वयं प्रस्फुटित होने लगते हैं। (ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते।)[8] और एक बार प्रयुक्त शब्द को पुन: परिवर्तित करने की की आवश्यकता नहीं पड़ती, यही स्थिति पाक कही जाती है और ऐसा कवि ही सिद्धसारस्वत कहा जाता है, जिसे यह सिद्धि प्राप्त प्राप्त हो जाए।[9] आचार्य वामन इसे अवेक्षण कहते हैं । उनके अनुसार काव्यरचना में उपयुक्त पदों का ग्रहण और अनुपयुक्त पदों के पदों के त्याग के द्वारा रचना की सुंदरता तथा उपयोगिता का परीक्षण ही अवेक्षण है,जिसे शब्द विन्यास में निपुण महाकवि शब्दपाक कहते हैं।[10] परन्तु वामन के अनुयायी भी इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि इस प्रकार की शब्दस्थिरता कई बार आग्रह के कारण भी होती है। अत: काव्यपाक तभी निष्पन्न होगा, जब शब्द में परिवर्तन की कोई सम्भावना ही न

©Indira Gandhi National Open University

रहे।[11] अवन्तिसुन्दरी इस मत का खण्डन करती हुई तर्क देती है कि महाकवियों की कृतियों में बहुधा एक स्थान पर अनेक पाठ उपलब्ध होते हैं, और वे सभी परिपक्व तथा समुचित भी होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। वस्तुतः महाकवियों की गुण, अलङ्कार, रीति, उक्ति तथा शब्दार्थ की योजना ही इस प्रकार रसानुगत होती है कि वह शब्दार्थक्रम सहृदयों को आकर्षक प्रतीत होता है।[12] अवन्तिसुन्दरी के अनुसार यही काव्यपाक है, जो कवियों की प्रौढ़ता में निहित है, शब्दों की शक्ति में नहीं। किसी एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द न रखा जा सके, यह तो एक प्रकार की अशक्ति हुई, उसे परिपक्वता नहीं कहा जा सकता।[13] इस प्रकार विदुषी आचार्या के अनुसार, जिसके द्वारा गुण, अलङ्कार , रीति, युक्ति एवं शब्दार्थ का गुम्फन रसज्ञों को आनन्द दे, वही काव्यपाक है।[14] ये सब उसी के उपादान हैं। स्पष्टतः इस सन्दर्भ में पूर्वपक्ष दाक्षिणात्य आचार्यो का है, जो शब्दयोजना में ही काव्य की स्थिति को स्वीकार करते हैं। मङ्गल और वामन इसी मत के समर्थक परमाचार्य थें। अवन्तिसुन्दरी का मत रसवादी औदीच्याचार्यों की मूल भावना के अधिक सन्निकट प्रतीत होता है। आचार्य भामह ने शब्द एवं अर्थ दोनों के समायोजन को महत्त्व देते हुए कहा है कि कुछ आचार्य रूपकादि अलङ्कारों को बाह्य तत्त्व मानते हैं तथा काव्य का अलङ्करण उनकी दृष्टि में सुप्तिङ्व्युत्पति से ही निष्पन्न होता है।[15] इससे पदशय्या अवश्य ही सुन्दर बन जाती है, परन्तु अर्थ में संस्कार नहीं आता। काव्यसौन्दर्य के आधान के निमित्त दोनों का ही संस्कार साथ-साथ अपेक्षित है।[16]

इस पूर्वभूमिका के साथ राजशेखर इस सन्दर्भ में अपना अभिमत प्रस्तुत करते हैं। स्वयं को प्रथम पुरुष के रूप में रखकर अपने अभिमत का प्रदर्शन करना राजशेखर की शैली हैं। विषय का उपसंहार करते हुए वे कहते हैं कि जहाँ पदों के परिवर्तन की आवश्यकता न रहे वही शब्दपाक है। इस सिद्धान्त के द्वारा पूर्वप्रतिपादित तीनों प्रमुख मतों का समाहार हो जाता है परन्तु काव्य काव्य में प्रयुक्त पद परिपक्व हैं अथवा नहीं इसका निर्णय सहृदय समालोचक ही कर सकता है।[17] यह भी एक अनुभूत तथ्य है कि सभी कवियों का काव्य समान रसास्वादन नहीं करवाता। इनसे निष्पन्न होने वाले आस्वाद को आस्वाद्य वनस्पतियों के स्वाद के अनुसार राजशेखर ने नवधा विभाजित किया है। परन्तु यह विभाजन भी अत्यन्त स्थूल ही है, क्योंकि अनन्त संसार में स्वाद के भी अनेक रूप हो सकते हैं। पुनरपि काव्यशिक्षा का अभ्यास करनेवाले छात्रकवियों के लिए इन्हें इन शीर्षकों में रखकर विषय का दिग्दर्शन भर करवाया जा सकता है।[18] निश्चय ही विभिन्न वनस्पतियों के अनुसार प्रतीत होने वाले आस्वाद सहृदयों सहृदयों के मध्य प्रसिद्ध रहे होंगे, जिनका एक प्रकार से राजशेखर ने समाहार ही किया है, परन्तु काव्य के रस की अन्य आस्वादनीय वनस्पतियों के साथ तुलना करना निश्चय ही मनोरञ्जक है। आचार्य भरत ने काव्य से प्रतीत होने वाले रस की तुलना षाडव रस के साथ की थी।[19] राजशेखर के द्वारा नव पाकों का विवेचन नवरसरुचिरा कविकृति की ओर सहसा घ्यान आकर्षित करता है।

काव्य से प्रतीत होने वाला नव प्रकार का पाक इस प्रकार हैं-

1. **पिचुमन्दपाक**- पिचुमन्द (नीम) सदृश जो काव्य आदि से अन्त तक तिक्त अतएव
आनन्दरहित हो उसे पिचुमन्दपाक कहते हैं।[20] निम्ब के समान हितकारक होने पर भी ऐसी उक्ति सहृदय को आनन्दित नहीं करती।

2. **वार्ताकपाक**- जो रचना पहले मध्यम तथा अन्त में बैंगन के समान अस्वादु हो उसे वार्ताक अथवा वृन्ताकपाक कहते हैं।[21] इस पाक का उल्लेख वामन ने भी किया है। उन्होंने वैसी रचना को वृन्ताकपाक की संज्ञा दी है, जिसमें सुप् एवं तिङ् का संस्कार होने पर भी अर्थ की प्राप्ति बाधित हो।[22]

©Indira Gandhi National Open University

3. **क्रमुकपाक**- जो काव्य आदि में उत्तम तथा अन्त में अस्वादु हो उसे क्रमुक (सुपारी) पाक कहते हैं।"

उपर्युक्त तीनों पाक अधम पाक हैं , जो त्याज्य हैं। इन्हें अधम कहने का आधार यह प्रतीत होता है कि इन सभी में अन्ततः आनन्द की अनुभूति नहीं होती। पिचुमन्दपाक तो आदि से अन्त तक स्वादहीन है, वार्ताक तथा क्रमुकपाक आरम्भ में मध्यम तथा उत्तम होने पर भी अन्त तक जाते- जाते स्वादहीन हो जाते हैं। आचार्य ने ऐसे पाकों का अभ्यास करने वाले कवियों को कुकवि की उपाधि प्रदान की है और उन्हें जीवित होते हुए भी मृत स्वीकार किया है।[24] कुकवित्व के प्रति भामह भी इसी प्रकार कठोर थें।[25]

4. **बदरपाक**- आदि में अस्वादु तथा अन्त में मध्यम स्वादवाला काव्य बदरपाक (बेरपाक) कहलाता है।[26]

5. **तिन्तिडीपाक**- इमलीस सदृश आदि से अन्त तक मध्यम स्वादवाला काव्य तिन्तिडीपाक के अन्तर्गत आता है।[27]

6 **त्रपुसपाक** - आदि में उत्तम एवं अन्त में मध्यम स्वादवाला काव्य त्रपुसपाक (ककड़ीपाक)है।[28]

ये तीनों मध्यम पाक हैं, क्योंकि इनमें अन्त तक पहुँचते-पहुँचते काव्यजन्य आस्वाद मध्यम हो जाता है। तथापि इस प्रकार की रचना करने वाले कवियों को अभ्यास के द्वारा परिष्कृत कर उत्तम बनाया जा सकता है। अतः इन्हें सद्गुरु के निर्देशन में काव्य का अभ्यास करना चाहिए। अग्नि में संस्कार करने से धातुमिश्रित सुवर्ण भी कुन्दन बन जाता है। इस संदर्भ में आचार्य दण्डी की यह कारिका सर्वथा समुद्धरणीय है-

न विद्यते यद्यपिपूर्ववासनागुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥

काव्यादर्श 1/1 04

7. **मृद्वीकापाक** - आचार्य ने आदि में अस्वादु एवं अन्त में स्वादु रचना को मृद्वीकापाक (द्राक्षापाक) कहा है।[29]

8. **सहकारपाक**- जो काव्य आदि में मध्यम तथा अन्त में स्वादु हो वह सहकारपाक है।[30]वामन ने इसे आम्रपाक कहा है, जो गुणों की स्पष्टता एवं पूर्णता में निहित है।[31]

9, **नारिकेलपाक**- आदि से अन्त तक स्वादु रचना नारिकेलपाक कही जाती है।[32]

उपर्युक्त तीनों को आचार्य ने उत्तमपाक कहा है, क्योंकि इनमें अन्ततः आनन्द की अनुभूति होती हैं इस प्रकार के कवि उत्तम कोटि कोटि के कहे जाते हैं। इन्हीं के विषय में आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है कि इस अत्यन्त विचित्र कविपरम्परा में कालिदासादि कुछ ही कवि महाकवि होने का गौरव प्राप्त कर पाते हैं।[33]

इनके अतिरिक्त एक **कपित्थपाक** का भी उल्लेख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता हैं।
राजशेखर के अनुसार जिस रचना में पाक सम्यक् प्रकार से अवस्थित न हो उसे कपित्थपाक कहते है।[34] ऐसे पाक वाले काव्य में सदुक्ति विरले ही प्राप्त होती हैं।भामह ने असुन्दर, असुनिर्भेद अर्थात् जिसका अर्थ करना कठिन हैं एवं रसयुक्त होने पर भी अरमणीय काव्य को अपक्व कपित्थ के सदृश कहा था।[35] काव्यालङ्कार में इस प्रकार के काव्य का एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है।[36]

©Indira Gandhi National Open University

राजशेखर का कथन है कि इस प्रकार के काव्य में भी कदाचित् कहीं एकाध सूक्ति उपलब्ध हो भी जाती हैं, परन्तु यह सत्काव्य नहीं हो सकता। इस प्रकार की अनवस्थित रचना करने वाले कवि भी नहीं कहे जा सकते। जन्मजात प्रतिभा न होने पर भी जो दूसरों की रचनाओं को पढ़-पढ़कर कविसुलभ यश की कामना से कविगोष्ठी में पहुँच जाते हैं तथा खींचतान कर बनाई गयी कविता को प्रस्तुत कर आते हैं, उन्हीं का काव्य इस कोटि में आता है।[37]

सन्दर्भ-संकेत

1. परिणाम इति मङ्गलः। कःपुनरयं परिणामः। इत्याचार्याः। सुपां तिङां च श्रवः सैषा व्युत्पतिः इति मङ्गलः। काव्यमीमांसा . अध्याय. 5

2. सुपां तिङां च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यलङ्कृतिम्। तदेतदाहुः सौशब्द्यम्। भामह काव्यालङ्कार 1/14

3.किन्त्वस्ति काचिदपरैव पदानुपूर्वी यस्यां न किञ्चिदपि किञ्चिदिवावभाति।
आनन्दयत्यथ च कर्णपथं प्रयाता चेतः सताममृतवृष्टिरिव प्रविष्टा। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति. 1/2/21 की वृत्ति।

4. म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥ उत्तररामायण.1 /36

5. वचनविन्यासक्रमो रीति।। - का.मी.तृ.अ.

6. व्युत्पत्तिः सुप्तिङा या तु प्रोच्यते सा सुशब्दता। सरस्वती 1 /72

7. पदनिवेशनिष्कम्पता पाकः इत्याचार्याः। का.मी. पञ्चम् अध्याय,

8. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।। उ.रा. 1/10

9. आवापोद्धरणे. तावद्यावद्दोलायते. मनः।
पदानां स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती।। का.मी. अ. 5

10. पदाधानोद्धरणमवेक्षणम्। अत्र श्लोकौ-
आधानोद्धरणे तावद् यावद्दोलायते मनः। पदस्य स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती।।
यत् पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम्। तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते।।
का.सू.वृ. 1/3/5

11. आग्रहपरिग्रहादपि पदस्थैर्यपयंवसायस्तस्मात्पदानां परिवृत्तिवैमुख्यं पाकः इति वामनीयाः। का. मी. आ.5

12. यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामनेकोऽपि पाठः परिपाकवान्भवति, तस्माद्रसोचितशब्दार्थसूक्ति निबन्धनः पाकः। का.मी. अ. 5

13. इयमशक्तिर्न पुनः पाकः इत्यवन्तिसुन्दरी । का.मी. अ.5

14. गुणालङ्काररीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः स मां प्रति।. का.मी. अ .5

5. रूपकादिमलङ्कारं बाह्यमाचक्षते परे।
सुपां तिङाञ्च व्युत्पत्तिं वाचां वाञ्छन्त्यङ्कृतिम्।। भा.का.1/14

6. तदेतदाहुः सौशब्द्यं नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी।
शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्टं द्वयं तु नः।। भा.का. 1/15 ;

©Indira Gandhi National Open University

17. कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दनिवेद्यः परं पाको5शऽभिधाविषयस्तत्सहृदयप्रसिद्धिसिद्ध एव व्यवहाराङ्गमसौ इति यायावरीयः। यायावरीयः। का.मी. अ.5

18. अयमत्रैव शिष्याणां दर्शितस्त्रिविधो विधिः।

किन्तु वैविध्यमप्येतत्त्रिजगत्यस्य वर्त्तते।। का.मी. अ.5

19.. यथा हि नानाव्यञ्जनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति , यथाहि गुडादिभिद्रव्यैर्व्यञ्जनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्त्यन्ते तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति। ना.शा. षष्ठ. अध्याय

20. आद्यन्तयोरस्वादु पिचुमन्दपाकम्। का.मी. अ.5

21. आदौ मध्यममन्ते चास्वादु वार्त्ताकपाकम्। वहीं

22. सुस्निड्संस्कारसारं यत् क्लिष्टवस्तुगुणं भवेत्।

काव्य वृन्ताकपाकं स्याज्जुगुप्सन्ते जनास्ततः॥ का.सू.व. 3/2/15

23. आदावुत्तममन्ते चास्वादु क्रमुकपाकम्। का.मी.प.अ.

24. प्रथमे त्याज्याः। वरमकविर्न पुनः कुकविः स्यात्। कुकविता हि सोच्छवासं मरणम्। का.मी.प.अ.

25. नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय च।

कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिण :।। भा.का.1 /12

26. आदावस्वादु परिणामे मध्यमं बदरपाकम्। का.मी.प.अ.

27. आद्यन्तयोर्मध्यमं तिन्तिडीकपाकम्। वहीं

28. आदावुत्तममन्ते मध्यमं त्रपुसपाकम्। वहीं

29. आदावस्वादु परिणामे स्वादु मृद्वीकापाकम्। का.मी.प.अ.

30. आदौ मध्यममन्ते स्वादु सहकारपाकम्। वहीं

31. गुणस्फुटत्वसाकल्यं काव्यपाकं प्रचक्षते।
चूतस्य परिणामेन स चाऽयमुपमीयते।। का.सू. वृ. 3/1/15

32. आद्यन्तयोः स्वादु नारिकेलपाकमिति। का.मी.प.अ.

33. येनास्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि संसारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्राः पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते। ध्वन्या. १/6 की वृत्ति

34. अनवस्थितपाकं पुनः कपित्थपाकमामनन्ति। का.मी.प.अ.

35. अहृद्यमसुनिर्भेदं रसवत्त्वेऽप्यपेशलम्।

काव्यं कपित्थपाकं तत् केषाञ्चित्सदृशं यथा।। भा.का. 5/62

36. प्रजाजनश्रेष्ठवरिष्ठभूभृच्छिरोऽर्चिताङ्घ्र पृथुकीर्तिधिष्ण्य।

अहिघ्नपद्मस्य जलारिधाम्नस्तवैव नान्यस्य सुतस्य वृत्तम्॥ भा.का. 5/63

37. मुख्यस्तावदयं न्यायो यत्स्वशक्त्या प्रवर्तते।

अन्यसारस्वता नाम सन्त्यन्योक्तानुवादिनः॥ भा.का. 6/6

©Indira Gandhi National Open University